ISSN 2277 - 7865

वर्ष ३५ अंक १२ मार्च २०१२

मूल्य ५०.०० रुपये

तित्थयर

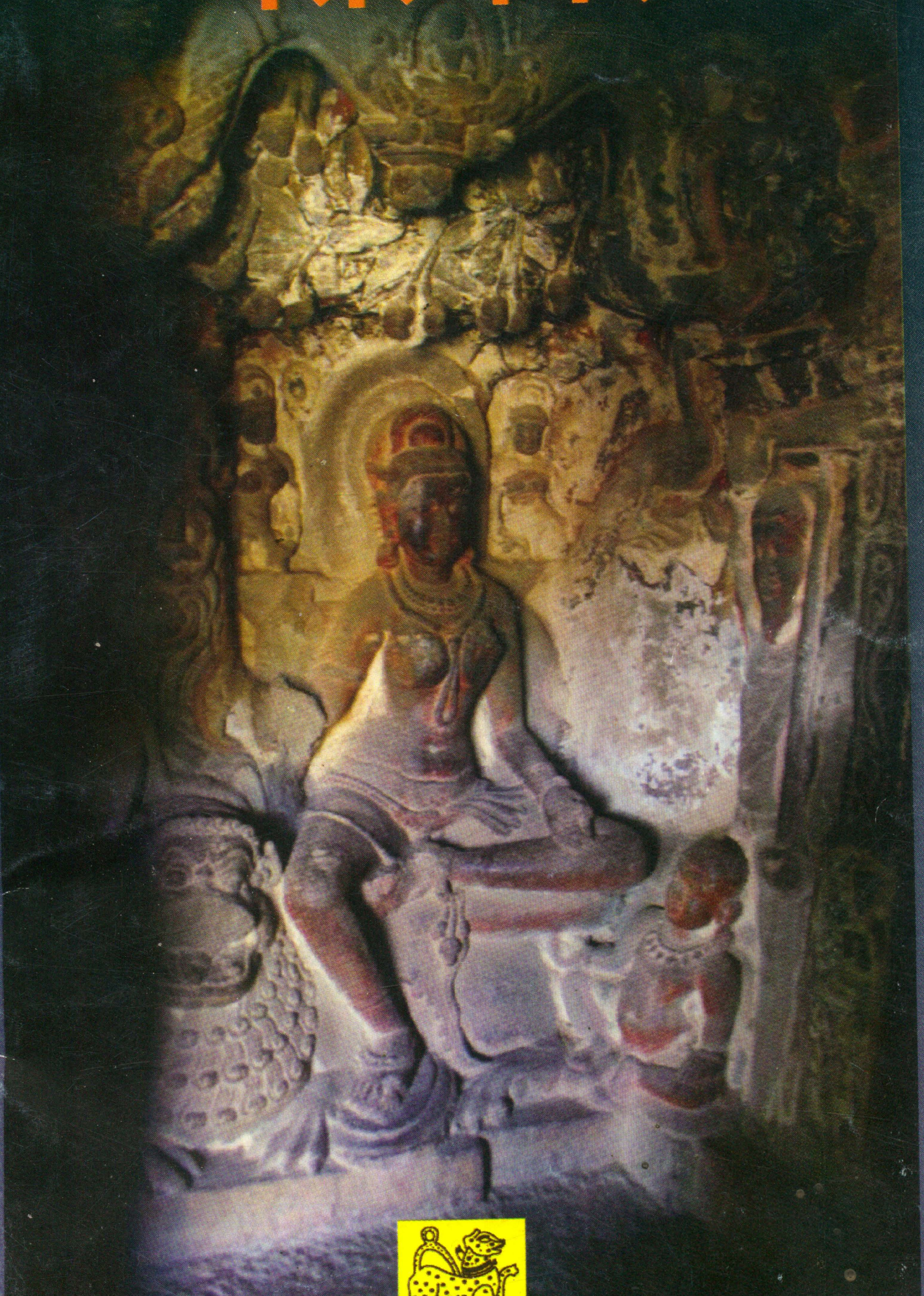

॥ जैन भवन ॥

ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late. Sikhar Chand Churoria

Our Quality Product of :

Anusandhan	Bhaonagari Ghantia
Kolkata Nasta	Jocker
Badsha Khan	Lajawab
Picnic	Papri Ghantia
Raja	Rim Jhim
Shubham	Tinku

MANUFACTURED BY

M/s. K. K. Food Product
Prop. Anil Kumar, Sunil Kumar Churoria
P. O. Azimganj, Dist: Murshidabad
Pin No.- 742122, West Bengal
Phone No.: 03483-253232,
Fax No.: 03483-253566

KOLKATA ADDRESS:

36, Maharshi Debendra Road, 3rd Floor Room No.- 308
Kolkata - 700 006, Phone No.: 2259-6990, 3293-2081
Fax No.: 033-2259-6989, (M) 9434060429, 9830423668

शुभ कामनाओं सहित —

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

Suvigya & Saurabh Boyed

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३५ | अंक - १२ मार्च | २०१२

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय

पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007

Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,

Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --

Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007

Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00

Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं. लेख	लेखक	पृ. सं.
१. जैन धर्म में रहस्यवाद का स्वरूप	डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य	४०१
२. कर्म		४१५
३. मुगलकाल में जैन धर्म एवं आचार्य	नीना जैन	४१९
४. कुवलय माला		४२४

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : एलोरा की गुफा में उत्कीर्ण देवी अम्बिका की मूर्ति।

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

जैन धर्म में रहस्यवाद का स्वरूप

(मध्ययुगीन हिन्दी जैन काव्य के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य

रहस्यवाद : अर्थवत्ता तथा व्युत्पत्तिपरक पृष्ठभूमि

रहस्यवाद मुख्यतः जिस रहस्य भावना के साथ सम्पृक्त होता है, वह प्राचीन भारतीय चिन्तन परम्परा का अभिन्न अंग रहा है। अज्ञात के प्रति जो जिज्ञासा प्राचीनकाल से मानव चेतना व चिन्तन प्रक्रिया को उत्सुक तथा उत्प्रेरित करती रही है, वही साधनात्मकता तथा अध्यात्म से सम्पृक्त होकर रहस्यवाद की तात्त्विक प्रक्रिया को उद्भासित करती रही है। परमतत्त्व के प्रति जिज्ञासा मूलतः प्राचीन काल से जिस रूप में प्रतिभासित होता रहा है, उसके द्वारा मानव की चिन्तनशीलता तथा बौद्धिकता का ही स्पष्ट परिणाम प्रतिफलित होता रहा है। चेतनात्मक स्वरूप के साथ मनोवैज्ञानिक स्तर पर व्यक्त पांचभौतिक जगत् से अलग एक अन्तर्यात्रा होती थी, जहाँ अपने अन्तःस्फुरित अपरोक्ष अनुभूतियों के द्वारा साधक उस परम सत्य को अनुभूत्यात्मक धरातल पर स्थापित कर अन्ततः उसका साक्षात्कार कर सकता था। यहीं मानवीय प्रवृत्ति **रहस्यवाद** के स्वरूप को परिभाषित करती है।[1]

रहस्यवाद शब्द **रहस्य** और **वाद** इन दो शब्दों के मेल से बना है। रहस्य शब्द परमतत्त्व के साधनात्मक स्वरूप का द्योतक है और वाद उसके वैचारिक तथा बौद्धिक चेतना का परिचायक है। अर्थ के दृष्टिकोण से रहस्यवाद का साधारण अर्थ है **'परमतत्त्व विषयक तात्त्विक संदर्भ का वैचारिक स्वरूप'।** जहाँ तक अध्यात्मवादी परिप्रेक्ष्य का सवाल है, रहस्यवादी शब्द की मूल सम्पृक्ति उस विचार या भावना से है, जिसमें

---

1. साहित्य कोश, पृष्ठ 625

परमतत्त्व सम्बन्धित अपरोक्षानुभव की प्रक्रियागत संचार के आयामों पर विचार किया जाता है। वस्तुतः रहस्यवादी चिन्तन के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा सभ्यता के प्राचीनतम युगों से मानवीय जिजीविषा के अभिन्न अंग के रूप में विकसित होता रहा है। वेद-उपनिषद् आदि प्राचीन साहित्य में रहस्यवाद के बीजात्मक स्वरूप को सामान्य तौर पर उजागर किया गया। **देश, काल, जाति अथवा धर्म या सम्प्रदाय की सीमा से ऊपर यह चेतना सार्वकालिक और सार्वभौम है।**[2]

शब्दशास्त्रीय दृष्टिकोण से **रहस्यवाद** शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। **वाद** प्रत्यय के वैचारिक पक्ष के अलावे **रहस्य** शब्द की अर्थवत्ता पर विद्वानों ने अलग से विचार किया है। व्युत्पत्तिगत दृष्टिकोण से **रहस्य** शब्द **रह त्यागे** धातु से निर्मित हुआ है। त्यागार्थक **रह्** धातु में असुत् प्रलय के संश्लेषण से रह + असुन् मिलाकर **रहस्य** शब्द का निर्माण होता है। यह व्याकरण के उणादि सूत्र के अन्तर्गत, चतुर्थपाद (सर्वधातुभ्योसुन्) में आता है। पाणिनिसूत्र के अनुसार **तत्रभवः दिगादिभ्यो यत्**[3] नियमानुसार यत् प्रत्यय लाने पर **रहस्य शब्द निष्पन्न होता है।** व्याकरणिक वृत्ति के अनुसार, **रहस्य** शब्द की **रह्यते अनेन इति रहः, रहसि भवं रहस्यम्, रहो भवं रहस्यम्** इत्यादि कई व्युत्पत्तियाँ हो सकती हैं। आचार्य विजयराजेन्द्र सूरि ने रहस्य शब्द का एकान्तिक अर्थ करते हुए **'रहः एकान्तस्तत्र भवं रहस्यम्'**, यह व्युत्पत्ति की है।[4]

अर्थवत्ता के दृष्टिकोण से **रहस्य** शब्द बहुधार्थी है। सामान्यतः जैसे विजयराजेन्द्रसूरि ने कहा है, **रहस्** का अर्थ **एकान्त** होता है। एकान्त में जो प्रक्रियागत रूप में संघटित होता है, उसी को **रहस्य** कहते हैं।

रहस् शब्द की मूल अर्थवत्ता **एकान्त** शब्द के साथ सम्पृक्त है। रहस्य वहीं है, जो एकान्त में हैं। **पाइअ-लच्छी नाम-माला कोश में 'गुज्झं**

---

2. सुदर्शनाश्री डॉ., आनन्दघन का रहस्यवाद, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1984, पृष्ठ 2
3. पाणिनि सूत्र - 4/3/53,54
4. अभिधान राजेन्द्र कोश, श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरि प्रणीत, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ 493

रहस्सं' अर्थात् गुह्य अर्थ में रहस्य शब्द का प्रयोग देखा जा सकता है।[5] **'पाइअसद्दमहण्णवो'** ग्रंथ में रहस्य **शब्द के एकाधिक पर्यायवाची अर्थों में एकान्त में उत्पन्न, तत्त्व, भावार्थ, अपवाद-स्थान आदि दिया गया है।**[6] दिगम्बर जैन धारा के अन्यतम प्रमुख शास्त्र ग्रंथ **धवला** में अन्तराय-कर्म को **रहस्य** शब्द से अभिहित किया गया है। कहा गया है—

'रहस्यमन्तरायः, तस्य शेष घाति त्रितय विनाशा-विनाभाविनी भ्रष्ट बीजवन्निःशक्ति कृता घाति कर्मणोः'[7]

यहाँ तात्त्विक रूप से यह समझाया गया है कि, **अन्तराय कर्म का अवशिष्ट नाश तीन घातिया कर्मों के नाश का अविनाभावी परिणाम है और अन्तराय कर्म का नाश होने पर अघातिया कर्म दग्ध बीज के समान शक्ति रहित हो जाते हैं।**[8]

शब्दार्थ के दृष्टिकोण से अमरकोश में रहस्य शब्द पर आलोकपात करते हुए कहा गया है कि—

विविक्त विजनः छन्नानिः शलाकास्तथा रहः।
रहस्योपांशु चालिगं रहस्यं तद्भवे त्रिषु।।[9]

यहाँ रहस् शब्द पर जितने अर्थ बताए गये हैं उनमें विविक्त, विजन, छन्न, निःशलाक, रहः, रपांशु और एकान्त दिया गया है। उसी प्रकार मेदिनीकोश में **रहस्तत्त्वे रमे गुह्ये,** जैसे प्रामाणिक आधारों के द्वारा **तत्त्व** या **सार पदार्थ** का अर्थ निकाला गया है।[10]

---

5. पाइअ-लच्छी नाममाला-कोश, गाथा 271
6. पाइअसद्दमहण्णवो, पृष्ठ 708
7. धवला 1.1.1, 1.44.4
8. सुदर्शनाश्री डॉ., आनन्दघन का रहस्यवाद, पृष्ठ 3।
9. अमरकोश 2/8, 22-23
10. मेदिनीकोश, पृष्ठ 3, साथ ही विशद विवरण के लिये देखें—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, रहस्यवाद, पृष्ठ 3

जैन धर्म में रहस्यवाद: शास्त्रीय तथा साहित्यिक स्वरूप:--

रहस्यवाद शब्द के साथ जैनधर्म का सरोकार उस रूप में नहीं रहा है। भारतीय दर्शन तथा साहित्य के अन्तर्गत जैनेतर धर्मों में रहस्यवाद जितना साधनात्मक स्वरूप तथा साहित्य-संरचना का आवश्यक अंग रहा है, उतना जैनधर्म में उसका संरचनात्मक सन्निवेश नहीं हो पाया है। रहस्यवाद के वैचारिक, संवेदनात्मक तथा साधनात्मक पक्ष की आधारभूत प्रतिष्ठा के लिए ईश्वरीय सत्ता के नेपथ्य अस्तित्त्व में विश्वास तथा कर्मकांड आधारित आचार-संहिता द्वारा पराजैविक अस्तित्त्व पर आस्था या उसकी तात्त्विक स्थापना सविशेष आवश्यक है। जैनधर्म वेद को न तो **अपौरुषेय** मानता है न हीं पराजैविकता के तृतीय अस्तित्त्व में (Third Existence of the Transmundane) आस्था रखता है। **वस्तुतः रहस्यवाद का आधार आस्तिकता है और आस्तिकता की भित्ति आत्म-परमात्मवाद है।** रहस्यवाद का प्रारम्भ आत्म-अस्तित्त्व से होता है और उसका (रहस्यवाद का) समापन होता है– परमात्म-साक्षात्कार में।[11]

दर्शनचेतना के विस्तृत फलक पर देखें तो जहाँ एक तरफ जैन-परम्परा ईश्वर या ब्रह्म की स्वतन्त्र सत्ता को नकारती है, वहीं वृहत् परिप्रेक्ष्य पर यह कहा जा सकता है कि जैन चिन्तन व दर्शन प्रणाली के अन्तर्गत परमात्मा का प्रत्यय उपस्थित है। विशुद्ध आत्मा ही जैनधर्म में परमात्मा का द्योतक है। वैदिक बोधात्मक चिन्तन में आत्मस्वरूप का विशुद्ध पर्याय ही परमात्मस्वरूप का प्रस्फुटित बिम्ब है।

आत्मिक स्थिति को जैन दर्शन में तीन अवस्थाओं से सम्पृक्त करते हुए उसका स्वरूप निर्धारण किया गया है। ये हैं– बहिरात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा। तात्त्विक स्तर पर देखें तो जैन रहस्यवाद द्वयात्मक (Dichotomic) है, आत्मा और परमात्मा। मूल आत्मा के

---

11. सुदर्शनाश्री डॉ., आनन्दघन का रहस्यवाद, पृष्ठ 37

दो पक्ष हैं; एक बहिरात्मा, दूसरा अन्तरात्मा, इन द्वयात्मक परिप्रेक्ष्यों में ही इन दोनों का समावेश होता है।

जब हम तात्त्विक परिप्रेक्ष्य की आलोचना करते हैं तो यह देखा जा सकता है कि आत्मा और परमात्मा एकात्मक है, अर्थात् एक ही सिक्के के अलग-पहलुओं के समान आत्मा विकसित पर्यवसान तथा सर्वोत्कृष्ट स्वरूप ही का परमात्मा है। आत्मा की शुद्धावस्था तथा परमात्मा में कोई भेद नहीं है। कर्ममल (कर्म की प्रक्रिया से उत्पन्न जो सूक्ष्मस्तरीय कुप्रभाव, मूलभूत चेतस् के प्रस्फुटन तथा उत्तरण में बाधा प्रदान करते हैं) जैसे-जैसे घटता चला जाता है, एक अवस्था के उपरांत समस्त विपरीतमुखी सत्ता के क्षालन हो जाने पर वहीं आत्मा विशुद्ध-स्वरूप बनकर परमात्मस्वरूप हो जाता है। इस तरह जैनधर्म साधनावस्था में जिज्ञासु, मुमुक्षु तथा प्रवर्तक में जिस आत्मा का अवलोकन करता है, वहीं सिद्धावस्था में आत्मारोहण के सर्वोच्च पर्याय के रूप में परमात्मा को ही अपने में पाता है। इस दृष्टि से जैन दर्शन के ज्ञानात्मक दृष्टिकोण से उपास्य-उपासक का कोई भेद नहीं पाया जाता। जैन रहस्यवादी अवधारणा का तात्त्विक, वैचारिक तथा सृजनात्मक स्वरूप, इसी केन्द्रीय दार्शनिक सत्ता को आधारभूत मानती रही है।

जब हम प्राचीन वैदिक परम्परा की तरफ देखते हैं तो जैन परम्परा के अन्तर्गत रहस्यवादी तत्त्व के रूप में ऋषभदेव का नाम पाते हैं। यजुर्वेद में ऋषभदेव और अजितनाथ को गूढ़वादी कहा गया है।[12] श्रीमद्भागवत में ऋषभदेव, जो जैन परम्परा के प्रथम तीर्थंकर माने जाते हैं, उनके चरित तथा साधना-पद्धति एक विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है-

'भरतं धरणि पालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोवरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गमन परिधानः प्रकीर्ण केश आत्मन्यारोपिता हवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज। जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूत वेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीत मौनव्रतस्तुष्णीं बभूव।'[13]

12. जैन, डॉ. प्रेमसागर, हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृष्ठ 476
13. श्रीमद्भागवत, गीताप्रेस, पंचम स्कन्ध, पंचम अध्याय, पृष्ठ 563

इस श्लोक में ऋषभ के कठोर वैराग्य की जो छवि दिखाई देती है, उसमें उनके अवधूत-औघड़ स्वरूप, तथा तपस्यामूलक कृच्छसाधन की रीति दिखाई देती है।

उपरोक्त श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋषभ के जीवन का अन्यतम प्रमुख सम्बन्ध रहस्यवाद से रहा है। वे स्वयं ही एक उच्चकोटि के रहस्यवादी थे, यह श्लोक वहीं प्रमाणित करता है।

इस बात पर अपना वक्तव्य रखते हुए डॉ. ए. एन. उपाध्ये सहमति प्रकट करते हैं—

"To take a practical view the Jain Tirthankaras like Rishabhdeva, Neminath, Parshwanath and Mahavira etc. have been some of the greatest mystics of the world."[14]

उपर्युक्त उद्धरण के साथ सायुज्य रखते हुए प्रो. आर. डी. रानाडे भागवत में ऋषभदेव सम्बन्धित श्लोक (संदर्भ 13) के परिप्रेक्ष्य में कहते हैं— "Rishabhdeva, whose interesting account we meet within the Bhagavata is yet a mystic of a different kind, whose utter carelessness of his body is the supreme mark of his God realisation".[15]

ऋषभदेव ने अपने शरीर के प्रति जो उदासीनता व्यक्त की, उससे आभ्यंतरीण अनुभूत्यात्मक जीवनोपलब्धि तथा आत्मसाक्षात्कार का स्वरूप ही उजागर होता है।

जैन आगम ग्रन्थ आचारांग सूत्र में हमें प्राचीनतम जैन रहस्यवाद के सूत्र मिलते हैं। इस प्राचीन प्रमाण के अन्तर्गत परमात्मा के **अवाङ्मानसगोचरम्** रूप का सीधा-स्पष्ट रूप हमें देखने का मौका मिलता है।

---

14. Upadhye, Dr. A.N., Introduction, Paramatma Prakash, p. 43.
15. Ranade, R.D., Indian Myticism, Mysticism in Maharashtra, p. 9.

आचारांगसूत्र में लिखा है—

'सव्वे सराणिषट्टंति। तक्का जत्थ ण विज्जई। मई तत्थ ण गाहिया। ओए अप्पतिट्ठाणस्स खेयण्णे'।।[16]

इसका अर्थ यह है कि परमात्मा का स्वरूप शब्दों के द्वारा प्रतिपादित नहीं है। तर्कगम्य भी यह नहीं है। बुद्धिग्राह्य भी परमात्मा का स्वरूप नहीं है।

बुद्धिग्राह्य भी परमात्मा का स्वरूप नहीं है। वाणी वहाँ मौन हो जाती है। अस्तित्त्ववाचक शरीर (जैविक देह) से रहित होकर वह ज्ञाता स्वरूप बनकर उभरते हैं।

आचारांग सूत्र में रहस्यबोध व चिन्तन के संकेत स्पष्टरूप से देखने को मिलता है। कहा गया है—

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ,
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ।।[17]

ऊपर का उदाहरण देखते हुए 'एकमेवाद्वितीयम्' श्लोक के आधार पर इसका भाव भी हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है। जो एक को जानता है, वह सब को जानता है और जो सब को जानता है वह एक को जानता है।

इसी रहस्यात्मकता की प्रतिध्वनि हमें आचारांग के एक और सूत्र में देखने को मिलता है। इस सूत्र में कहा गया है—

जे एगं नामे से बहुं नामे,
जे बहुं नामे, से एगं नामे।।[18]

अर्थात् जो एक को वशीभूत कर लेता है, वह बहुतों को वशीभूत कर लेता है। जो बहुतों को वश में कर लेता है, वह एक को वश में कर

---

16. आचारांग, 1/5/6
17. आचारांग सूत्र 1/5/6
18. आचारांग सूत्र 1/3/4 – इस श्लोक से तुलनीय है बृहदारण्यकोपनिषद् का यह श्लोक – आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति (4/5/6)।

लेता है। जैन आगम शास्त्रों में कई जगहों पर सूत्रात्मक श्लोकों के द्वारा हमें रहस्यात्मकता के संकेत मिलते हैं। विशेषावश्यक भाष्य में भी आचारांग सूत्र की तरह कहा गया है—

'एक्कं जाणं सव्वं जाणति सव्वं च जाणमेगंति।
इय सव्व जाणंतो णाडगारं सव्व धा गुणति।।'[19]

'प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार' नामक ग्रन्थ में भी इसी बात की पुनरावृत्ति हुई है। उसमें कहा गया है—

एको भावः सर्वथा येन दृष्टः सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः।।[20]

आशय है— 'जिसने एक पदार्थ को सब प्रकार से देख लिया है उसने सब पदार्थों को सब प्रकार से देख लिया है तथा जिसने सब पदार्थों को सब प्रकार से जान लिया है, उसने एक पदार्थ को सब प्रकार से जान लिया है।'

दिगम्बर धारा के प्रख्यात आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने 'प्रवचनसार' ग्रन्थ में भी इसी तरह के भावयुक्त शब्दों को सम्प्रेषित किया है। अपने मूल स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर एक अनेक का भाव मिट जाया करता है। 'प्रवचनसार' की गाथाओं में कुन्दकुन्द कहते हैं—

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तिक्कालिये तिहुवणत्थे।
णादुं तस्सण सक्कं सपज्जयं दलमेगं वा।।
दव्वं अणंत पज्जयमेगमणंताणि तव्वजादीणि।
ण विजाणदि जदि जुगवं किध सो सव्वाणि जाणादि।।[21]

'उन्होंने भी यही कहा है कि जो सबको नहीं जानता, वह एक को भी नहीं जानता और जो एक को नहीं जानता, वह सबको नहीं जानता। बात एक ही है, क्योंकि सबका जानना एक आत्मा के जानने

19. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा 482
20. प्रवचनसार, गा० 1, 48-49
21. वही, गा. 1, 52-53

से होता है। इसलिए आत्मा का जानना और सबका जानना एक है। तात्पर्य यह कि जो सबको नहीं जानता, वह एक आत्मा को भी नहीं जानता।'[22]

मुमुक्षु के लिए स्वात्मजिज्ञासु होना रहस्यात्मक साधना में प्रविष्ट होने का अधिकार है। आत्म-जिज्ञासा ही रहस्यभावना का बीजस्वरूप है। आचारांगसूत्र में ही व्याख्यान का प्रारम्भ आत्म-जिज्ञासा से होता है। प्रथम सूत्र में ही कहा गया है–

'के अहं आसी? के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि।'[23]

यह जो प्रश्न या जिज्ञासा है कि– मैं कौन हूँ, कौन था, अगले जन्म में क्या होऊँगा यही सम्यग्दर्शन-प्राप्ति का प्रथम चरण है। यह जिज्ञासा ही साधक को व्यावहारिक साधनात्मक प्रक्रिया से सम्पृक्त करता है। तभी साधक आत्मशोधन तथा आत्मालोचन की प्रक्रिया से होकर अनुभूत्यात्मक सत्य का साक्षात्कार करता है। आत्म-शोधन प्रणाली इसीलिए 'गूढ़' कहलाती है। जैन चिन्तन में आत्मशोध ही रहस्यवाद है। वहीं 'एकमेव प्राप्तव्य' है, उसे पा लेने के पश्चात्, कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। गूढ़ तत्त्व का अन्तःकरण जब प्रस्फुटित होता है, तब कुछ भी अस्पष्ट या दुर्बोध्य नहीं रह जाता।

तीर्थंकरों की मूल परम्परा के बाद आचार्यों की शास्त्रीय एवं साधनात्मक परम्परा शुरू होती है। इस धारा के प्रख्यात जैन साधक, चिन्तक तथा सर्जकों ने दर्शन तथा सृजनात्मक साहित्य की अपनी परम्परा तैयार की है। साथ ही साथ इनमें रहस्यवादी दृष्टि का स्पष्ट स्वरूप देखने को मिलता है। इन आचार्यों में आचार्य कुन्दकुन्द (दूसरी शताब्दी), कार्तिकेय (दूसरी शताब्दी), पूज्यपाद (पाँचवीं शताब्दी) योगीन्दु (छठी शताब्दी), मुनि रामसिंह (ग्यारहवीं शताब्दी), आचार्य

---

22. सुदर्शनाश्री, डॉ. आनन्दघन का रहस्यवाद, पृष्ठ 40-41
23. आचारांग सूत्र 1/1/1

हरिभद्र (आठवीं शताब्दी), बनारसीदास (सत्रहवीं शताब्दी), आनन्दघन (सत्रहवीं शताब्दी) तथा उपाध्याय यशोविजय (अठारहवीं सदी) का नाम उल्लेखनीय है।[24]

रहस्यवादी चिन्तनपरक काव्य सृजन का जैन-साहित्य में आचार्य कुन्दकुन्द से प्रारम्भ होता है। कुन्दकुन्द ने अपनी गहन चिन्तनपरक ग्रन्थों के माध्यम से रहस्यवाद के साथ-साथ भावानुभूति को भी अभिव्यक्त किया है। समयसार, मोक्षपाहुड़, भावपाहुड़ आदि अनेक इनकी रहस्यवादी रचनाएँ हैं। मोक्षपाहुड़ में इन्होंने आत्मा के तीन भेद करते हुए यह कहा कि अन्तरात्मा के द्वारा बहिरात्मा का परित्याग करते हुए परमात्मा का ध्यान करो—

'तिपयारो सो अप्पा परमंतर बाहिरो हु देहीणं।
तल परो झाइज्जइ अन्तो वाएण चयहि बहिरप्पा।।'[25]

कुन्दकुन्द स्पष्ट शब्दों में यह कहते हैं कि आत्मा-परमात्मा तत्त्वतः अभेद है। **'अप्पा सो परमप्पा'**, आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा स्व-रूप नहीं पहचानता। निरन्तर कर्ममल के आवरण से वह अपना स्वरूप भूलाकर बैठा है। निज-स्वरूप से वंचित है। कर्म आदि से रहित आत्मा परमात्मा कैसे बन सकता है? कुन्दकुन्द उदाहरण देते हैं—

'अइसोहण जोएणं सुद्धं हेमं हवइ जह तहय।
कालाई लद्धीए अप्पा परमप्पो हवदि।।'[26]

स्वर्ण-पाषाण जिस प्रकार शोधन सामग्री द्वारा शुद्ध स्वर्ण में परिणत होता है, ठीक वैसे ही कर्मादि से रहित होकर आत्मा की पूर्णांग परिणति परमात्मा में हो जाती है।

कुन्दकुन्द के इस भावात्मक रहस्यवाद का सीधा प्रभाव कार्तिकेय, पूज्यपाद, योगीन्दु मुनि, मुनि रामसिंह तथा कवि बनारसीदास की

---

24. **Prof. Satyaranjan Bannerjee (ed.), Prolegomena to Prakritica et Jainica, p. 204-208**
25. मोक्षप्राभृत - 4
26. मोक्षपाहुड़ - 24

रचनाओं में स्पष्ट देखने को मिलता है। आत्मा के भेदगत विकास में इन सभी कवियों ने आचार्य कुन्दकुन्द के समान ही त्रिविध भेद की वैचारिकता को प्रस्तुत किया है। आचार्य पूज्यपाद विरचित **'समाधिशतक'** एवं **'अध्यात्मरहस्य'** रचनाएँ आध्यात्मिक तथा रहस्यप्रधान है।

मुनि योगिन्दु के **'परमात्म-प्रकाश'** एवं **'योगसार'** नामक ग्रन्थों में रहस्यवादी तत्त्व प्रतिफलित होता है। अन्य रहस्यवादी सर्जकों की तरह वे भी यह मानते हैं कि शरीर में परमात्मा का निवास है। योगिन्दु कहते हैं–

'जेहउ णिम्मलु णाण मत सिद्धि हि णिव सइ देउ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देह हंम करि भेउ।।'[27]

जो शुद्ध निर्विकार आत्मा लोकाकाश के अग्रभाग में स्थित है, वही इस देह में भी विद्यमान है। साथ ही यह निर्देश भी दिया गया है कि इसी शरीर में उसका भी दर्शन करें।

शरीर स्थित जो यह आत्मा है, वही परमात्मस्वरूप हैं।[28] निरंजन पद की प्राप्ति पर मन परम चेतना में एकात्म हो जाता है। वह सामरस्य को प्राप्त करता है–। तभी तो कहा गया है–

'मणि मिलियत परमेसरहं परमेसल वि मणस्स।
विण्णि वि समरसी हूवाहं पुल चडावत कस्स।।'[29]

इस समरसता में कौन किसकी पूजा चढ़ाएँ? एकाकार हो चुके इस अभेद-आनन्द में आत्मा तथा परमात्मा एक सम्पूर्ण ईकाई में बँध जाते हैं।

हिन्दी जैन कवियों की परम्परा में रहस्यवादिता के भावात्मक स्वरूप को अपने सर्जनात्मक साहित्य में उकेरनेवाले अन्यतम प्रमुख व्यक्ति कविवर **बनारसीदास** रहे हैं। **नाटक समयसार**, **अध्यात्म-गीत**,

---

27. परमात्मप्रकाश, पृष्ठ 23
28. एहु जु अप्पा सो परमप्पा – परमात्मप्रकाश, पृष्ठ 174-175
29. परमात्मप्रकाश, 12

बनारसी विलास नामक इनकी अध्यात्म प्रधान रचनाएँ काफी चर्चित रही हैं।

बनारसीदास अपने काव्यात्मक रहस्यवाद के द्वारा भावात्मक स्तर पर चिन्तन और मनन को सम्प्रेषित करते हैं। 'जल बिनु मीन' जैसे अपने प्रियतम से मिलने के लिए उनकी आत्मा तड़प रही हैं। मन की सारी दुविधाएँ इस मिलन से समाप्त हो जाती है। घट में ही (इसी जैविक शरीर में) उसे अपने पतिरूपी परमात्मा के दर्शन होते हैं। इस युग्म मिलन (ऐकान्तिक निर्गुण में भावात्मक सगुणात्मिका मिलन का) जो स्वरूप है, उसे बनारसीदास ने अपनी एक पंक्ति में अभिव्यंजित किया है—

'पिय मोरे घट मैं पिय माहिं, जलतरंग ज्यों दुविधा नाहि।'[30]

हिन्दी जैन कवियों में बनारसीदास के बाद रहस्यवादी चिन्तन के आलोक में काव्य रचयिता संत **आनन्दघन** ही आते हैं। इनकी भी काव्यिक चिन्तन में रहस्यवादी अन्तर्दृष्टि की व्याप्ति पाई जा सकती है। बनारसीदास की भाँति आत्मा-परमात्मा में प्रेमी-प्रियतम का पारस्परिक सम्बन्ध आनन्दघन में देखने को मिलता है।

आनन्दघन पर विशेष तौर पर अध्ययन तथा समीक्षा के बाद डॉ. सुदर्शनाश्री ने उनके रचनात्मक रहस्यवाद के युग्म प्रकृति पर आलोकपात किया है। आनन्दघन का रहस्यवाद—साधनात्मक रहस्यवाद तथा भावात्मक रहस्यवाद के द्वारा सम्प्रेषित किया जाता रहा है।[31]

आनन्दघन में एक अद्वैतानुभूति की भावना सक्रिय रही है। जहाँ तक भावनात्मक रहस्यवाद का सम्बन्ध है, आनन्दघन के पदों में वह आध्यात्मिकता से सराबोर है। समता और चेतनसत्ता का अद्वैतानुभव आनन्दघन के काव्यात्मक रहस्यवाद को एक विशिष्ट स्तर प्रदान करता है। इस बात का प्रकृष्ट प्रमाण उनके **'श्रेयांस जिनस्तवन'** नामक रचना में देखने को मिलता है। आध्यात्मिक लक्षणों के विविध

30. बनारसी-विलास, पृष्ठ 161
31. सुदर्शनाश्री, डॉ. आनन्दघन का रहस्यवाद, पृष्ठ 44

रूपों पर प्रकाश डालने के साथ-साथ अध्यात्म-तत्त्व के अन्तर्निहित स्वरूप की जानकारी प्रदान करता है।

रहस्यवादी तत्त्व पर प्रकाश डालते समय आनन्दघन सबसे पहले आध्यात्मिक तथा जैविक पात्रता के विभाजन पर प्रकाश डालते हैं। एक रूप तो अध्यात्मवादी–आत्मारामी तथा भौतिकवादी–इन्द्रियरामी दूसरा रूप है। कवि की वाणी में–

'सयल संसारी इन्द्रियरायी, मुनिगण आतमरामी रे।
मुख्यपणे जे आतमरामी, ते केवल निष्कामी रे।।'[32]

जो भौतिक (जैन तत्त्वानुसार पौद्‌गलिक) सुख को ही महत्त्व प्रदान करते हैं, वे इन्द्रियरामी या भौतिकवादी कहे जाते हैं। दूसरी ओर, अपने समस्त भौतिक सुखों को तिलांजलि देकर अनासक्त भाव से जो साधु आत्मारामी और निःस्पृह होते हैं–त्यागपूत जीवन के दृष्टान्त स्वरूप हैं।

'अध्यात्म' की 'कसौटी' पर कसते हुए, आनन्दघन इसका चित्रण करते हुए कहते हैं–

'निज स्वरूप जे किरिया साधै, तेन अध्यातम लहिए रे।
जे किरिया करि चउगति साधै तेन अध्यातम कहिए रे।।'[33]

साधक 'स्वरूपानुलक्षी' (स्व-स्वरूप के रूप) होकर जिस साधना-क्रिया को करता है, उसे ही अध्यात्म की संज्ञा दी जा सकती है। रहस्यवाद और अध्यात्म के पारस्परिक सम्पर्क पर आलोकपात करते हुए उपाध्याय यशोविजय कहते हैं– अध्यात्म के लक्षण में बीजभाव आत्मा का है।

'गत मोहाधिकाराणामात्मानमधिकृत्य या।
प्रवर्तते क्रिया शुद्धा तदध्यात्मं जगुर्जिनाः।।'[34]

---

32. श्रेयांसजिनस्तवन, आनन्दघन ग्रंथावली, द्वितीय खंड, पृष्ठ 179
33. वही, पृष्ठ 179
34. अध्यात्मसार, अधिकार 2, श्लोक 2

इसमें प्रधान लक्षण क्या है? **'आत्मानमधिकृत्य प्रवर्तते इत्यध्यात्मम्'**- अर्थात् जो आत्मा के स्वरूप को लेकर प्रवृत्त हो, वही अध्यात्म है। अध्यात्म के प्रकारों पर कवि आनन्दघन केवल उपरोक्त भाव-अध्यात्म को ही स्वीकारते हैं, बाकी को वे दूर हटा देते हैं। उनके शब्दों में—

'नाम अध्यातम ठवण अध्यातम द्रव्य अध्यातम छंडो रे।
भाव अध्यातम निज-गुण साधै, तो तेहशुं रढ़ मंडो रें।।'[35]

अतः नाम, स्थापना (ठवण), द्रव्य और भाव, इन चार प्रकार के अध्यात्म में आनन्दघन भाव-अध्यात्म पर ही सर्वाधिक बल प्रदान करते हैं। यही आत्मोपलब्धि की कुंजी है।

अध्यात्म की गहराई तथा रहस्यवाद में जो पारस्परिक सम्बन्ध हैं, वहाँ भावनात्मक पक्ष में दाम्पत्यमूलक आध्यात्मिक प्रेम, विरह-मिलन आदि का वर्णन हुआ है और साधनात्मक पक्ष में भक्ति प्रेम योग की साधना तथा मुख्यतः जैन-योग की सहज साधना देखी जा सकती है। आलोचकों के अनुसार, सन्तों के हठयोगपरक साधना का थोड़ा-बहुत प्रभाव रहा है।

इस तरह **आनन्दघन** के आध्यात्मिक रहस्यवाद का प्रभाव उनके समकालीन **उपाध्याय यशोविजयजी** पर पड़ा। उपाध्याय यशोविजय द्वारा रचित **समाधि तंत्र**, **अध्यात्मसार**, **अध्यात्मोपनिषद** आदि रचनाओं में रहस्यवाद का प्रभाव पूर्णतः देखा जा सकता है, तथा अध्यात्म-तत्त्व-विवेचन बड़े विशिष्ट रूप से इन ग्रन्थों में उभरकर आया है।

मध्ययुगीन जैन हिन्दी रहस्यवादी काव्य में इस तरह हम साधनात्मक तथा भावात्मक दोनों रूप देख पाते हैं।

---

35. श्रेयांसजिनस्तवन, खंड 2, पृष्ठ 180

जो जीव छट्ठे गुणस्थान में देव आयु के बन्ध का आरम्भ कर उसे उसी गुणस्थान में समाप्त किये बिना ही, सातवें गुणस्थान को प्राप्त करता है अर्थात् छट्ठे गुणस्थान में देव आयु का बन्ध प्रारम्भ कर सातवें गुणस्थान में ही उसे समाप्त करता है, उस जीव को सातवें गुणस्थान में 59 कर्म प्रकृतियों का बन्ध होता है। इसके विपरीत जो जीव छट्ठे गुणस्थान में प्रारम्भ किये गये देव आयु के बन्ध को, छट्ठे गुणस्थान में ही समाप्त करता है— अर्थात् देव-आयु का बन्ध समाप्त करने के बाद ही सातवें गुणस्थान को प्राप्त करता है उस जीव को सातवें गुणस्थान में 58 कर्म प्रकृतियों का बन्ध होता है। क्योंकि सातवें गुणस्थान में आहारकद्विक का बन्ध भी हो सकता है।।8।।

भावार्थ—चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्व होने से तीर्थंकर नामकर्म बाँधा जा सकता है। तथा चौथे गुणस्थान में वर्तमान देव तथा नारक, मनुष्य आयु को बाँधते हैं और चतुर्थ गुणस्थान वर्ती मनुष्य तथा तिर्यंच देव-आयु को बाँधते हैं। इसी तरह चौथे गुणस्थान में उन 74 कर्म प्रकृतियों का भी बन्ध हो सकता है, जिनका कि बन्ध तीसरे गुणस्थान में होता है अतएव सब मिलाकर 77 कर्म प्रकृतियों का बन्ध चौथे गुणस्थानक में माना जाता है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया और लोभ इन चार कषायों का बन्ध चौथे गुणस्थान के अन्तिम समय तक ही होता है, इससे आगे के गुणस्थानों में नहीं होता। क्योंकि पंचम आदि गुणस्थानों में अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय नहीं होता। और कषाय का उदय जितने गुणस्थानों में होता है उतने गुणस्थानों में ही उस कषाय का बन्ध हो सकता है। मनुष्यगति-मनुष्य-आनुपूर्वी और मनुष्य-आयु ये तीन कर्म प्रकृतियाँ केवल मनुष्य जन्म में ही भोगी जा सकती हैं। इसलिए उनका बन्ध भी चौथे गुणस्थान के अन्तिम समय

तक ही हो सकता है क्योंकि पाँचवें आदि गुणस्थानों में मनुष्य-भव योग्य-कर्म-प्रकृतियों का ही बन्ध होता है। इस प्रकार वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन और औदारिकद्विक अर्थात् औदारिक शरीर तथा औदारिक अंगोपांग इन तीन कर्म प्रकृतियों का बन्ध भी पाँचवें आदि गुणस्थानों में नहीं होता क्योंकि वे तीन कर्म प्रकृतियाँ मनुष्य के अथवा तिर्यंच के जन्म में ही भोगने योग्य है और पंचम आदि गुणास्थानों मे देव के भव में भोगी जा सकें ऐसी कर्म प्रकृतियों का ही बन्ध होता है। इस तरह चौथे गुणस्थान में जिन 77 कर्म प्रकृतियों का बन्ध होता है उनमें से बजऋषभ-नाराच-संहनन आदि उक्त 10 कर्म प्रकृतियों के घटा देने से शेष 67 कर्म प्रकृतियों का ही बन्ध पाँचवे गुणस्थानक में होता है।

प्रत्याख्यानावरण-क्रोध, प्रत्याख्यानावरण-मान-प्रत्याख्यानावरणमाया और प्रत्याख्यानावरण-लोभ इन चार कषायों का बन्ध पंचम गुणस्थान के चरम समय तक ही होता है आगे के गुणस्थानों में नहीं होता; क्योंकि छट्ठे आदि गुणस्थानों में उन कषायों का उदय ही नहीं है। इसलिए पाँचवें गुणस्थान की बन्ध योग्य 67 कर्म-प्रकृतियों में से, प्रत्याख्यानवरण-क्रोध आदि उक्त चार कषायों को छोड़कर शेष 63 कर्म प्रकृतियों का बन्ध छट्ठे गुणस्थानक में माना जाता है।

सातवें गुणस्थान को प्राप्त करने वाले जीव दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो छट्ठे गुणस्थान में देव आयु के बन्ध का प्रारम्भ कर, उसे उस गुणस्थान में समाप्त किये बिना ही सातवें गुणस्थान को प्राप्त करते हैं; और फिर सातवें गुणस्थान में ही देव-आयु के बन्ध को समाप्त करते हैं तथा दूसरे वे जो देव आयु के बन्ध का प्रारम्भ तथा उसकी समाप्ति दोनों छट्ठे गुणस्थान में ही करते हैं और अनन्तर सातवें गुणस्थान को प्राप्त करते हैं। पहले प्रकार के जीवों को छट्ठे गुणस्थान के अन्तिम समय में अरति, शोक, अस्थिर नाम-कर्म, अशुभनाम-कर्म, अयशःकीर्तिनाम-कर्म और असातवेदनीय इन छः कर्म-प्रकृतियों का बन्धविच्छेद होता है और दूसरे प्रकार के जीवों को छट्ठे गुणस्थान के

अन्तिम समय में उक्त 6 कर्म प्रकृतियाँ तथा देव-आयु, कुल 7 कर्म प्रकृतियों का बन्ध-विच्छेद होता है। अतएव छट्ठे गुणस्थान की बन्ध योग्य 63 कर्म प्रकृतियों में से अरति, शोक आदि उक्त 6 कर्म प्रकृतियों के घटा देने पर, पहले प्रकार के जीवों के लिये सातवें गुणस्थान में बन्ध योग्य 57 कर्म प्रकृतियाँ शेष रहती हैं और अरति शोक आदि उक्त 6 तथा देव-आयु कुल 7 कर्म प्रकृतियों के घटा देने पर दूसरे प्रकार के जीवों के लिये सातवें गुणस्थान में बन्ध योग्य 56 कर्म प्रकृतियाँ शेष रहती हैं परन्तु आहारक शरीर तथा आहारक अंगोपांग इन दो कर्म प्रकृतियों को उक्त दोनों प्रकार के जीव सातवें गुणस्थान में बाँध सकते हैं। अतएव पहले प्रकार के जीवों की अपेक्षा से सातवें गुणस्थान में उक्त 57 और 2 कुल 59 कर्म प्रकृतियों का बन्ध माना जाता है। दूसरे प्रकार के जीवों की अपेक्षा का बन्ध माना जाता है। दूसरे प्रकार के जीवों की अपेक्षा से उक्त 56 और 2 कुल 58 कर्म प्रकृतियों का बन्ध सातवें गुणस्थान में माना जाता है।।67।।8।।

अडवन्न अपुव्वाइंमि निद्द दुगंतो छपन्न पणभागे।
सुर दुग पणिंदि सुखगइ तसनव उरलविणु तणुवंगा।।9।।
अष्टापश्चाशदपूर्वादौ निद्राद्विकान्तः षद्पंचाशत् पश्चभाग।
सुरद्विक पंचेन्द्रिय सुखगति त्रसनवकमौदारिकाद्विना तनु पाङ्गानि।।9।।7।।

समचउरनिमिण जिणवण्ण अगुरुलहु चउ छलंसि तीसंतो।
चरमे छवीस बंधो हासरई कुच्छभयभेओ।।10।।
समचतुरस्त्रनिर्माण जिनवर्णाऽगुरुलघुचतुष्कं षष्ठांशे त्रिंशदन्तः
चरमे षड्राबिशतिवन्धो हास्यरतिकुत्साभयभेदः
अनियट्टि भागपणगे, इगेग हीणो दुवीसवीहबंधो।
पुम संजलण चउण्हं, कमेण छेओ सतरसुहुमे।।10।।
अनिवृत्ति भागपंचक, एकैकहीनो द्वाविंशतिविधबन्धः।
पुंसंज्वलन चतुर्णी क्रमेणच्छेदः सप्तदशसूक्ष्मे।।11।।

अर्थ—आठवें गुणस्थान के पहले भाग में, 58 कर्म प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है। दूसरे भाग से लेकर छट्ठे भाग तक पाँच भागों में 56 कर्म प्रकृतियों का बन्ध होता है। क्योंकि निद्रा और प्रचला इन दो कर्म प्रकृतियों का बन्ध विच्छेद पहले भाग के अन्त में ही हो जाता है। इससे वे दो कर्म प्रकृतियाँ आठवें गुणस्थान के पहले भाग के आगे बाँधी नहीं जा सकतीं तथा सुरद्विक (2) देवगति देव-आनुपूर्वी) पंचेन्द्रियजाति (3) शुभ-विहायोगति (4) त्रसनवक (13) त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेव, औदारिक शरीर के सिवा चार शरीर नामकर्म जैसे :- वैक्रियशरीरनामकर्म (14) आहारक-शरीरनामकर्म (15) तैजस्त्रशरीरनामकर्म (16) और कार्मण-शरीरनामकर्म (17) औदारिक अंगोपांग को छोड़कर दो अंगोपांग, वैक्रिय-अंगोपांग (18) तथा आहारक-अंगोपांग (19) समचतुरस्त्रसंस्थान (20) निर्माणनामकर्म (21) तीर्थंकरनामकर्म (22) वर्ण (23) गन्ध (24) रस (25) और स्पर्शनामकर्म (26) अगुरुलधुचतुष्क; जैसे:- अगुरुलधुनामकर्म (27) उपघातनामकर्म (28) पराघातनामकर्म (29) और उच्छंसनामकर्म (30) ये नामकर्म की (30 प्रकृतियाँ आठवे गुणस्थान के छट्ठे भाग तक ही बाँधी जाती हैं; इससे आगे नहीं। अतएव पूर्वोक्त 56 कर्म प्रकृतियों में से नामकर्म की इन 30 प्रकृतियों के घटा देने पर शेष 26 कर्म प्रकृतियों का ही बन्ध आठवें गुणस्थान से सातवें भाग में होता है हास्य, रति, जुगुप्सा और भय इन नो-कषाय—मोहनीयकर्म की चार प्रकृतियों का बन्ध-विच्छेद आठवें गुणस्थान के सातवें भाग के अन्तिम समय में हो जाता है। इससे उन 4 प्रकृतियों का बन्ध नवें आदि गुणस्थानों में नहीं होता।।10।।

क्रमशः

अकबर का जैन आचार्यों एवं मुनियों से सम्पर्क तथा उनका प्रभाव

नीना जैन

चिमनलाल डाहया भाई ने अपने लेख (हीरविजयसूरि और द जैन टीचर्स एट व कोर्ट ऑफ अकबर) में छः महीने इस प्रकार बताये है—**पर्यूषणों के दिन, समस्त रविवार, सोफीयान का दिन, ईद, बादशाह के जन्म का महीना, मिहिर और नवरोज का दिन, रजवमास, और उसके पुत्रों के जन्म दिन।**[1]

इसी लेख में जैन सन्तों के प्रभाव के बारे में आगे लिखते हैं कि- **इसके अलावा गायों, बैलों, भैसों, नर, मादा, दोनों ही प्रकार के जानवरों को कसाईघर नहीं ले जाया जाता था मृतक कर पूर्णतः समाप्त कर दिया, तथा कैदी भी नहीं बनाये जाते थे।**[2]

मोहनलाल दलीचन्द्र देसाई का कहना है कि **अकबर सत्य का शोधक था। जहां से सत्य मिलता था। वहीं से ग्रहण कर लेता था। जैन धर्म में से प्राणी वध त्याग, जीवित प्राणियों के प्रति दया, मॉंसाहार,**

---

1. The days of Purshanda, all sundays, clays of sofiam, Ida equinox, month of his birth, days of Mihira and Navroz month or Rajab and the birth days of his sons.
   जैन शासन दिवाली अंक, वीर सम्वत् 2438 पृष्ठ 122
2. More over that cows and bulls and buffaloes, both male and female should never be lad to the house of death, that the whole tax upon the dead should be remitted and that prisoners also should not be made.
   जैन शासन दिवाली अंक, वीर सम्वत् 2438 पृष्ठ 128

के प्रति अरुचि, पुनर्जन्म की मान्यता, कर्म सिद्धान्त इन वस्तुओं को स्वीकार किया जैन धर्म के तीर्थों को उनके अनुयायियों को सौंप दिया। उनके आचार्यों एवं साधुओं के प्रति उदारता बताई।[1]

यह जैन सन्तों का ही प्रभाव था कि अकबर ने अपने राज्य में एक वर्ष में छः महीने, छः दिन तक जीव-हिंसा का निषेध किया था। यद्यपि इन दिनों का ठीक-ठीक गिनती करना कठिन है क्योंकि उनमें कई महीने मुसलमानी त्यौहारों के होने से यह निर्णय होना कठिन है कि उन महीनों के कितने-कितने दिन गिनने चाहिए लेकिन इतना निश्चित है कि जो महीने गिनाये गये है उनमें व उनमें से अमुक-अमुक दिनों में बादशाह ने अपने समस्त राज्य में जीव-हिंसा का निषेध किया था और स्वयं भी इन दिनों मांसाहार नहीं करता था। न केवल जैन अपितु जैनेतर लेखकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। अकबर का सर्वस्व गिना जाने वाला शेख अबुलफजल लिखता है—

सम्राट अपने ज्ञान के कारण मांस से बहुत कम अभिरुचि रखता है, और बहुधा मोतियों से भरी हुई जुबान से कहा करता है कि यद्यपि मनुष्य के लिये भांति-भांति के व्यंजन विद्यमान है तथापि वह, अपनी अज्ञानता और निर्दयता से प्राणियों के सताने में मन लगाता है तथा उनकी हत्या करने और खाने से हाथ नहीं खींचता। कोई व्यक्ति पशुओं के न सताने की खूबी पर अपनी आंखें नहीं खोलता वरन् अपने को जानवरों की कब्र बनाता है। यदि उसके कन्धों पर संसार का बोझ न होता तो एक दम मांस खाना छोड़ देता, तथापि उसका विचार यह है कि शनैः-शनैः उसे नितान्त त्याग दे। कुछ दिनों तक वह अपने समय के लोगों की चाल पर चलता रहा, परन्तु बाद को उसने पहले कुछ शुक्रवारों को मांस खाना बन्द किया और फिर रविवारों को।

1. जैन साहित्य नो इतिहास—मोहनलाल दलीचन्द देसाई पृष्ठ 557

किन्तु अब प्रत्येक सौर मांस की प्रतिपदा रविवार, सूर्य और चन्द्र ग्रहण के दिन, संयम वाले दो दिवसों के बीच का दिन रजवमास के सोमवार, हरइलाही महीने के उत्सव का दिन फरवरीदीन का पूरा महीना और समस्त आबान मास जो कि सम्राट का जन्म मास है। संयम के दो दिनों में और बढ़ा दिये गये हैं। आबान मास के लिए यह निश्चय हुआ था कि सम्राट की अवस्था के जितने साल हों, उतने दिन वह उक्त महीने में मांस न खाये, परन्तु अब उसकी अवस्था के साल आबान मास के दिनों से अधिक हो गये हैं, इसलिए आजुर महीने के भी कुछ दिनों में उसने व्रत रखा परन्तु इस समय उक्त मास के सभी दिन सूफियाना (संयमवाले) हो गये। ईश चिन्तन की अधिकता के कारण उनमें पिरतिवर्ष वृद्धि होती जा रही हैं और वह पांच दिन से कम नहीं होती।[1]

अकबर द्वारा राज्याभिषेक के पूरे महीने निषेध का जो वर्णन जैन ग्रन्थों में मिलता है उसकी पुष्टि आइने अकबरी से भी होती है, अकबर कहा करता था **मेरे राज्याभिषेक की तारीख के दिन, प्रतिवर्ष ईश्वर का उपकार मानने के लिए किसी भी मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये, जिससे सारा वर्ष आनन्द के साथ निकले।**[2]

अकबर कहा करता था कि यह उचित नहीं है कि एक आदमी अपने पेट की पशुओं की कब्र बनाये।[3]

---

1. आइने अकबरी हिन्दी अनुवादक—रामलाल पाण्डेय अंक 20 पृष्ठ 123-124.
2. Men should annually refrain from eating meat on the anniversary of the month of my accassion as a thanks giving to the almighty, in order that the year may pass in prosperity.
   आइने अकबर—एच. एस. जैरेट भाग 3 पृष्ठ 446
3. It is not right that a man should make his stomach the grave of animals.
   आइने अकबरी एच. जैरेट भाग 3 पृष्ठ 443

इसी तरह एक अन्य स्थान पर अकबर ने कहा कि **यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता कि मांसाहारी जीव सिर्फ मेरे शरीर को खाकर ही तृप्त हो जाते और दूसरे जीवों के भक्षण से दूर रहते तो मेरे लिए यह बात बड़े सुख की होती। या मैं अपने शरीर का एक अंश काटकर मांसाहारियों को खिला देता और फिर से वह अश प्राप्त हो जाता, तो मैं बड़ा प्रसन्न होता।**[1]

अकबर के उपरोक्त विचारों से उसके दया संबंधित विचारों का पता चलता है मांसाहारियों को अपना शरीर खिलाकर तृप्त करने और दूसरे जीवों को बचाने की भावना उच्चकोटि की दयालु वृत्ति रखने वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं, यह सब जैन सन्तों का ही प्रभाव था। जैन सन्तों के इस महत्व को अकबर के दरबार में रहने वाला कट्टर मुसलमान बदायूंनी भी स्वीकार करता है। अकबर की मांस और पशु-वध में अरुचि के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि **इस समय बादशाह ने अपने कुछ नवीन प्रिय सिद्धान्तों का प्रचार किया था। सप्ताह के पहले दिन में प्राणी वध निषेध की कठोर आज्ञा थी कारण कि यह सूर्य पूजा का दिन है। फरवरदीन महीने के पहले 18 दिनों में आबान के पूरे महीने में (जिसमें बादशाह का जन्म हुआ था।) और हिन्दुओं[2] को प्रसन्न करने के लिए और भी कई दिनों प्राणी वध का निषेध किया था। यह हुक्म सारे राज्य में जारी किया गया था इस हुक्म के विरुद्ध चलने**

---

1. Would that my body were so vigorous as to be of service to eaters of meat who would this forego other animal life, or that as I cut of a piece for their mourishment, It night he replaced by another.
   आइने अकबरी अनुदित एच. एस. जैरेट भाग 3 पृष्ठ 445-46
2. बदायूंनी ने जो हिन्दू शब्द का उपयोग किया है उसे जैन ही समजना चाहिए क्योंकि बादशाह को उपदेश देकर पशु-वध निषेध, मांसाहार, त्याग और जीव दया सम्बन्धित कार्य करवाने में यदि कोई प्रयत्नशील हुए तो वे जैन साधु ही हैं।

वाले को सजा दी जाती थी।। इससे अनेक कुटुम्ब वर्बाद हो गये थे और उनकी मिल्कियतें जब्त कर ली गई थी। इन उपवासों के दिनों में बादशाह ने धार्मिक तपश्चरण की भांति मांसाहार का सर्वथा त्याग किया था। शनैःशनैः वर्ष में छः महीने और उससे भी ज्यादा दिन तक उपवास करने का अभ्यास वह इसलिए करता गया कि अन्त मांसाहार का वह सर्वथा त्यागकर सके।[1]

एक अन्य स्थान पर बदायूंनी ने यह भी लिखा है कि **यदि कोई कसाई के साथ बैठकर खाता था तो उसका हाथ काट लिया जाता था और यदि कोई कसाई के साथ सम्बन्ध रखता था तो उसकी केवल छोटी ऊंगली काटी जाती थी।**[2]

.जैन श्रमणों (साधुओं) के महत्व को बदायूंनी ने इस प्रकार भी स्वीकार किया है कि **सम्राट अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा श्रमणों और ब्राह्मणों से एकान्त में विशेष रूप से मिलता था। वे नैतिक शारीरिक धार्मिक और आध्यात्मिक शास्त्रों में, धर्मोन्नति की प्रगति में और मनुष्य जीवन की सम्पूर्णता प्राप्त करने में दूसरे (समस्त सम्प्रदायों) विद्वानों और पण्डित पुरुषों की अपेक्षा हर तरह से उन्नत थे। वे अपने मत की सत्यता और हमारे (मुसलमान) धर्म के दोष बताने के लिए बुद्धिपूर्वक परम्परागत प्रमाण देते थे वे ऐसी दढ़ता और युक्ति से अपने मत का समर्थन करते थे कि उनका कल्पना तुल्य मत स्वतः सिद्ध प्रतीत होता था। उसकी सत्यता के विरुद्ध नास्तिक भी कोई शंका नहीं उठा सकता था**[3]

क्रमशः

---

1. अलबदायूंनी—डब्ल्यू. एच. लॉ द्वारा अनुदित भाग 2 पृष्ठ 331
2. वहीं पृष्ठ 388
3. वहीं पृष्ठ 264

श्रमणों शब्द के पूर्ण विवरण के लिए देखिये परिशिष्ट नं. 4

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

मित्र! भीलराज ने पाँच ही रत्न वापिस दिये हैं। इनमें से आधे मैं ले लूँगा और आधे तुम। इसी पर संतोष करो। बलवान के आगे मैं कर भी क्या सकता था?

मायादित्य का सिर लज्जा से नीचा हो गया। स्थाणु सहारा देते हुए उसे अपने गांव ले आया और वहाँ औषधोपचार करवा के स्वस्थ कर लिया।

मनुष्य कितना भी पापी हो किन्तु सज्जनता उस पर प्रभाव डालती ही है। पापी का हृदय परिवर्तन कर देती है वह। मायादित्य का हृदय भी शोक और ग्लानि से भर गया। वह ज्यों-ज्यों विचार करता त्यों-त्यों उसे अपनी अधमता और नीच कर्म से घृणा होती जाती। वह स्वयं से भी घृणा करने लगा। हृदय का उद्वेग अधिक बढ़ा तों उसने गाँव के वृद्ध समझदार जनों की सभा बुलाई और अपना हृदय खोलकर रखा। समस्त वृत्तान्त सुनाकर कहा—

मैंने अपने मित्र के साथ विश्वासघात किया। इस मित्रद्रोह के महापाप के प्रायश्चित स्वरूप में जीवित ही जल जाना चाहता हूँ। आप लोग मुझे इसकी आज्ञा दीजिए।

समस्त वृत्तान्त सुनकर एक वृद्ध ने कहा—

मायादित्व! तुमने जो कुछ किया लोभ के वश में होकर किया। थोड़े धन का लोभ महापाप नहीं होता।

दूसरे वृद्ध ने कहा—

अग्नि में जलने का विचार उचित नहीं है। अग्नि से स्वर्ण आदि धातुओं की शुद्धि होती है, मित्रद्रोह के पाप की नहीं।

तीसरे ने अपनी राय प्रगट की—

इसके लिए तो तुम्हें कापालिक साधु बन जाना चाहिए। उससे विश्वासघात का पातक मिट जायेगा।

चौथे ने भाग्यवाद और शास्त्रों का सहारा लेकर उसे निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास किया—

शास्त्रों में उल्लेख है कि *बुद्धि कर्मानुसारिणी* जैसी होनहार होती है वैसी ही बुद्धि हो जाती है।........

इस सिद्धान्त से तो कोई पापी ही न रहा। बीच में ही बात काटकर सभी उपस्थित जनों ने ऐतराज कर दिया।

पाँचवें ने सुझाव दिया—

पाप-पुण्य और विवेक की परम्परा है और सदा रहेगी। मनुष्य को अपनी विवेक बुद्धि से उचित और धर्मसम्मत कार्य ही करने चाहिए। किन्तु प्रायश्चित भी बहुत कठोर नहीं होना चाहिए।

तो फिर कौन सा प्रायश्चित इसके लिए उचित रहेगा? अन्य उपस्थित-जनों ने पूछा।

गंगा भारत की पवित्र नदी है। इसमें स्नान करने से सभी पातक, कलंक मिट जाते हैं, इसलिए इसे गंगा स्नान करना चाहिए।

यह सुझाव सबको पसन्द आया। सरल भी था। सभी उपस्थित वृद्धजनों ने व्यवस्था दी—

मायादित्य! तुम गंगा तट पर रहकर नित्य गंगा स्नान करो और वहीं गंगाजल का सेवन करते हुए प्राण-त्याग करो। यही तुम्हारे लिए उचित प्रायश्चित है।

अब तक स्थाणु चुपचाप बैठा था। वह सभी के विचार सुन रहा था। व्यवस्था सुनकर उठ खड़ा हुआ और बोला—

गंगास्नान अथवा तपस्या तक की बात तो ठीक है किन्तु मैं अपने मित्र का मरण नहीं होने दूँगा। यदि है भी तो यह मेरा अपराधी

है और मैं इसे अपराध मुक्त करता हूँ। इससे न मुझे पहले ही कोई शिकायत थी और न अब है। मैं इसे कहीं नहीं जाने दूँगा।

स्थाणु की इस उदारता पर सम्पूर्ण सभा धन्य-धन्य कह उठी। मायादित्य ने भी कहा—

मित्र! तुम जैसा उदार-हृदय व्यक्ति तो बड़े सौभाग्य से मिलता है। विश्वास रखो, मैं मरूँगा नहीं। तपस्या द्वारा ही प्रायश्चित्त करूँगा। इस समय मुझे जाने दो। मेरा हृदय शोक और ग्लानि से संतप्त है।

सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर आचार्य धर्मनन्दन ने राजा पुरन्दर दत्त से कहा—

हे राजन! यह कहकर मायादित्य अपने ग्राम से चल दिया और शोक संतप्त हृदय की शान्ति के लिए यहाँ बैठा है।

अपने जीवन की सत्य घटना सुनते ही मायादित्य की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। कुटिलता और कपट का कूड़ा-करकट बाहर निकलने लगा। वह अपने स्थान से उठा और आचार्य महाराज के श्रीचरणों को पकड़ रूँधे कण्ठ से बोला—

शरण! गुरुदेव शरण! मुझ पापी का उद्धार करिये।

दयासागर आचार्य ने अपना वरदहस्त उसके सिर पर रखकर उसे अपनी शरण में ले लिया।

लोभदेव की कथा :-

मायावी, कुटिल स्वभाव वाले पुरुष के निंद्य कर्म को सुनकर राजा पुरन्दरदत्त सिहर उठा। मित्रद्रोह और विश्वासघात ऐसे दो अवगुण हैं जिनको कभी भी और किसी भी समाज में सहन नहीं किया जा सकता। राजा ने अब लोभ कषाय का स्वरूप जानने की जिज्ञासा प्रगट की तो आचार्य धर्मनन्दन कहने लगे—

राजन्! लोभ विग्रहकारी, प्रीति एवं मित्रता का नाश करने वाला, और सभी कार्यों का नाश करने वाला है। लोभ के वश में हुआ

मनष्य अधा, गूँगा और बहरा बनकर छल-छन्दमयी कर्मों से घोर पाप का उपार्जन करता है।

इस सभा में क्या ऐसा कोई पुरुष उपस्थित है? राजा ने पूछा।

गुरुदेव ने बताया—

तुम्हारे बायीं ओर पृष्ठ भाग में बैठा हुआ पुरुष लोभ की साक्षात् मूर्ति है।

राजा ने पीछे को दृष्टि डाली तो उसे एक पुरुष बैठा हुआ दिखाई दिया। उस पुरुष का शरीर मानो पिंजर पर चमड़ा मढ़ दिया गया हो, बिल्कुल सूखा, ताड़ के वृक्ष समान लम्बा, लम्बी गरदान और नेत्र ऐसे गहरे तथा सूखे जैसे मरुस्थल का कूप, बैताल सरीखे पैर मानो उड़ने को तत्पर हो।

गुरुदेव ने आगे कहा—

कौशाम्बी नरेश! लोभ के वश में हुआ मनुष्य पतंगे के समान अग्नि में कूद पड़ता है, मछली के समान सागर में विचरता है। वह कुछ भी कर सकता है—बस उसे धन प्राप्ति की आशा होनी चाहिए। किन्तु धन मिलता नहीं और वह जीवन-भर तृष्णा की आग में जलता रहता है।

प्रभो इस पुरुष ने क्या-क्या निद्य कार्य किये और इसका नाम क्या है? राजा ने पूछा।

आचार्यश्री ने बताया—

इसका नाम लोभदेव है और इसने क्या-क्या किया सो ध्यान देकर सुनो।

तक्षशिला नगरी धन-धान्य और समृद्धि से भरपूर है। वहाँ के निवासी सुखी और सम्पन्न हैं। ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाले भव्य भवन नगरी की शोभ बढ़ाते रहते हैं। उस नगरी की नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) दिशा में उच्चस्थल नाम का एक ग्राम है। उच्चस्थल ग्राम धन-धान्य और गोधन से समृद्ध है।

क्रमशः

तित्थयर वर्ष ३५
अप्रैल २०११ से मार्च २०१२

निबन्ध

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	गौतम– गणधर या बुद्ध	डॉ. लता बोथरा	५
२.	उड़ीसा	डॉ. लता बोथरा	४१
३.	मुगलकाल में जैनधर्म एवं आचार्य परम्परा	नीना जैन	७७,११३,१५९,१९४,२२१,२६६ ३०२,३३८,३८३,४१९
४.	जैन ज्योतिष साहित्य	स्व. डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य	८७,१२५
५.	श्रमण संस्कृति की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि	इसिभासियाइं	१४९,१८५
६.	कर्म		२५७,२९३,३२९,३७७,४१५
७.	जैन साधना तथा साहित्य में मधुर रस	डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य	३६५
८.	जैन धर्म में रहस्यवाद का स्वरूप	डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य	४०१

कथानक :

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	हरिश्चन्द्र–तारा		५४,९९,१२९,१६३
२.	कुवलय माला	श्री केवलमुनि	२०४,२३४,२७८,३१३, ३४९,३८८,४२४

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   - Vol - 1 (satakas 1- 2) Price : Rs. 150.00
   - Vol - 2 (satakas 3- 6) 150.00
   - Vol - 3 (satakas 7- 8) 150.00
   - Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata : 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism Price : Rs. 15.00
   ISBN : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 15.00
   ISBN : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda
   Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee-
   Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee
   Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee
   Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8 Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN: 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

TITTHAYARA
Vol XXXV No.09
25th March 2012

Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects . Interiors . Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700013
Phone No.-2227 5240/45, Fax :22276356
Email Id:info@nahardecor.com